SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

सुभाष चन्द्र बोस के राजनीतिक और समाजवादी चिंतन

नवनीत कुमार, शोधार्थी, स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग
विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखंड, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
नवनीत कुमार

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 17/08/2023
Revised on : -----
Accepted on : 24/08/2023
Plagiarism : 01% on 17/08/2023

शोध सार

सुभाष चन्द्र बोस (1897–1945) एक उग्र राष्ट्रवादी देशभक्त थे। उन्होंने आध्यात्मिक आदर्शवादी के रुप में अपना जीवन आरम्भ तो किया परन्तु अन्तिम समय में राजनीतिक और सामाजिक यथार्थवादी बन गये। ब्रिटिश शासन के प्रति तीक्ष्ण शत्रुता उनके व्यक्तित्व का सार था। उन्हें समझौतावादी पद्धति में विश्वास नहीं था। वे प्रबल कर्मयोगी थे। उनकी शक्ति की अभिव्यक्ति उनके राजनीतिक कृयाकलाप से हुई। सिद्धान्तकार अथवा राजनीतिक विचारक न होते हुए भी उन्होंने देश के राष्ट्रीय आंदोलन की गतिविधि तथा विकास के संबंध में गहन चिंतन–मनन किया। उनकी रचनाओं में कुछ सैद्धांतिक महत्व के राजनीतिक व सामाजिक विचार निहित हैं इसलिए वे आधुनिक भारतीय राजनीतिक व सामाजिक चिंतन के इतिहास में स्थान पाने के अधिकारी हैं।

मुख्य शब्द

आदर्शवाद, यथार्थवाद, राष्ट्रवाद, मानवतावादी, लोकतंत्र, समाजवाद.

सुभाष चन्द्र बोस के चिंतन के क्षेत्र में रोचक ढंग से परिवर्तन हुआ था। उन्होंने आध्यात्मिक आदर्शवादी के रुप में अपना जीवन आरम्भ किया परन्तु अन्तिम समय में राजनीतिक और सामाजिक यथार्थवादी बन गये।[1] राजनीति के संबंध में प्लेटो, सिसरो और ग्रीन द्वारा प्रतिपादित नैतिक दृष्टिकोण जिसका गोखले और गाँधी ने अनुकरण किया था वह नैतिक दृष्टिकोण बोस को पसंद नहीं था। वे राजनीतिक यथार्थवाद के मूल्य को समझते थे। धार्मिक तथा राजनीतिक मामलों को वे मिश्रित करने के पक्षधर नहीं थे। राजनीतिक सौदेबाजी मे उन्हें अटूट विश्वास था। राजनीतिक सौदेबाजी के संबंध में उन्होंने लिखा है "राजनीतिक सौदेबाजी का रहस्य यह है कि आप जितने शक्तिशाली हैं उससे अधिक शक्तिशाली जान पड़ें।"[2]

उपयोगिता अथवा कार्यसाधता के आधार पर राष्ट्र निर्मित नहीं किया जा सकता। राष्ट्र के पुनर्निर्माण का वास्तविक कार्य तभी संपन्न हो सकता है जब लोगों में "हैम्पडन तथा क्रॉमवेल जैसा अविचल आदर्शवाद हो।"[3] इसके लिए आत्म–त्याग तथा कष्ट सहन करना होगा।

राष्ट्र की स्वतंत्रता के प्रति तीव्र उन्माद रखने के कारण बोस की गणना अग्रिम पंक्ति के राष्ट्रवादियों में होती है। वे अपने दृढ़ संकल्प, अदम्य साहस, अपूर्व त्याग और अद्‌भुत शौर्य के साथ मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए बिना किसी साधन और सहायता के एक आदर्श स्थापित कर चुके थे। उन्होंने कर्मयोगी के रुप में अपना जीवन व्यतीत किया। कर्मयोग को अपनाने की प्रेरणा उन्हें स्वामी विवेकाननद तथा अरविन्द घोष से प्राप्त हुई थी। बोस स्वामी विवेकानन्द से विशेष रुप से प्रभावित थे, उनकी दृष्टि में विवेकानन्द निर्भीक मनुष्यत्व का मूर्त्तरुप थे। उनसे बोस ने 'आत्मनो मोक्षार्थम जगद् हिताय' (आत्म मोक्ष का अर्थ–जगत का कल्याण) सीखा।[4]

सत्ता के संबंध में बोस का दृष्टिकोण मानवतावादी था। उन्होंने इस संबंध में लिखा है,–" मेरी दृष्टि में प्रेम सत्ता का तात्विक स्वभाव है, विश्व का सार है और मानव जीवन का तात्विक गुण है।"[5] परन्तु यह भी सत्य है कि प्रेम और अहिंसा में निष्ठा रखने के बावजूद विवेकानन्द की तरह उनका दृढ़ विश्लेषण करते हुए सुभाष ने लिखा था,–".....अंत में वह क्या चीज है जिसके कारण भारत का भौतिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में पतन हुआ है? उसका भाग्य तथा प्राकृतिक शक्तियों में अत्यधिक विश्वास, आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति के संबंध में उसकी उदासीनता, आधुनिक युद्ध विज्ञान में उसका पिछड़ापन, उसमें परवर्ती दर्शन से उत्पन्न शान्तिमय सन्तोष की भावना तथा अहिंसा का पालन जो हास्यास्पद सीमा तक पहुंच गया है।[6] बोस के आलोचक अक्सर उन पर हिंसा का प्रयोग करने वाली फासीवादी शक्तियों के समर्थन और सहयोग का तथा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम हिंसात्मक साधनो के प्रयोग का मानते हैं परन्तु यह सत्य नहीं है। भारत को ब्रिटिश दासता से मुक्ति की तीव्र चाहत रखने वाले बोस का मत था कि पूर्णतः अहिंसक तरिके से इस उद्देश्य को प्राप्त कर पाना संभव नहीं है, पर ऐसा भी नहीं था कि वे हिंसा के प्रति अपनी आस्था रखते थे। उन्होंने अनेक अवसरों पर हिंसा के प्रति घृणा का भाव व्यक्त करते थे। 28 सितम्बर, 1929 को उन्होंने हाबड़ा में अपने संबोधन के दौरान आतंकवाद और क्रान्ति के बीच अंतर को स्पष्ट करते हुए कहा था–"मैं नहीं जानता कि हमारे देश में आज भी कुछ लोग ऐसे हैं, जिनका मानना है कि चंद बम या पिस्तौलों के द्वारा हम स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं लेकिन दुर्भाग्य से भारत की मुक्ति ऐसी आसान बात नहीं है। ये बम या पिस्तौल यत्र–तत्र आतंक पैदा करने में सफल हो सकते हैं, परन्तु क्रान्ति कभी नहीं ला सकते हैं। आतंकवाद एक विशुद्ध भौतिक घटना है, लेकिन क्रान्ति का जन्म हमारे विचारों के व्यापक संचार और साहित्य के माध्यम से होता है।"[7]

बोस गाँधीजी की सत्यनिष्ठा और चारित्रिक पवित्रता की प्रशंसा किया करते थे और उनकी अनन्य भक्ति, दुर्दमनीय इच्छा शक्ति तथा अथक क्रियाशीलता के समक्ष शीश नवाते थे।[8] उन्होंने यह भी स्वीकार किया था कि कांग्रेस को सुदृढ़ बनाने तथा जनता में व्यापक रुप से जागृति उत्पन्न करने के लिए गाँधीजी ने महान कार्य किया है, परन्तु इसके बावजूद राजनैतिक यथार्थवादी होने के नाते बोस गाँधीजी के अत्यधिक नैतिकतावाद की सराहना नहीं कर सके। बोस का मानना था कि उद्देश्य की शुद्धता के संबंध में अत्यधिक छानबीन में फंसने से राजनैतिक समस्याएं बढ़ जाती हैं। सुभाष का मानना था कि "गाँधीजी भारतीय जनता के राजनीतिक नेता हैं और साथ ही अहिंसा के पुजारी हैं, परन्तु महात्मा जी यह दोहरी भूमिका सफलतापूर्वक अदा नहीं कर सके हैं, क्योंकि एक व्यक्ति के लिए दो भूमिकाएं अदा करना हमेशा आसान नहीं है। समस्याओं के प्रति गाँधीजी का दृष्टिकोण तत्वतः नैतिक होने के कारण वह ब्रिटिश राजनीतिज्ञों तथा प्रतिक्रियावादियों की कुटिल चालों को समझने में असफल रहे।[9] उन्हें उम्मीद था कि एक ऐसा वामपंथी दल अवश्य उदित होगा, जो अधिक जुझारु और उग्र तत्वों को अवश्य संगठित कर सकेगा, ऐसा दल गाँधीजी के नेतृत्व से बाहर रहकर देश की स्वतंत्रता प्राप्त करने में सफल होगा। बोस के अनुसार भारत को महात्मा गाँधी के नेतृत्व में मुक्ति नहीं मिल सकती।"[10] (यद्यपि सुभाष बोस की यह धारणा असत्य सिद्ध हुआ) 1921 में चितरंजन दास के साथ जुड़कर अपना राजनीतिक जीवन की शुरुआत करने वाले सुभाष गाँधीजी के असहयोग आंदोलन से जुड़ तो गये, पर बाद में उन्हें गाँधीजी की नीतियों के कारण उनके कार्यक्रम से किसी प्रकार का कोई सहानुभूति नहीं रहा। 1928 में मोतीलाल नेहरु की अध्यक्षता में गठित समिति ने 'डोमिनियन

स्टेट्स' के पक्ष में अपना प्रस्ताव घोषित किया परन्तु जवाहरलाल नेहरु एवं बोस ने इसका प्रबल विरोध किया क्योंकि इन्हे पूर्ण स्वतंत्रता के अलावा कोई प्रस्ताव स्वीकार नहीं था। 1931 में 'गाँधी–इवरिन समझौता' होने के पश्चात जेल से छूटकर आने के उपरांत इस समझौते के साथ–साथ विशेष तौर से भगत सिंह तथा उनके सहयोगियों की फांसी के बाद सविनय अवज्ञा आंदोलन के स्थगन को लेकर कड़ा विरोध किया। 1935 में बोस द्वारा 'भारतीय शासन अधिनियम' में प्रस्तावित 'संघ योजना' की स्वीकृति का विरोध करने वालों के नेतृत्वकर्त्ता होने के कारण यथार्थवादी राजनैतिक के रुप में उनकी ख्याति शीर्ष रुप धारण चुकी थी। यथार्थवादी सोंच के साथ बोस भारतीय स्वतंत्रता के लिए युवा आंदोलन के प्रति भी पूर्ण रुप से वचनबद्ध थे। 1928 के महाराष्ट्र प्रांतीय सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए बोस ने कहा कि इस देश के युवाओं में जागृति इस दौर के सर्वाधिक आशावादी लक्षणों में से एक है। 19 अक्टूबर, 1929 में पंजाबी छात्रों के द्वारा आयोजित लाहौर सत्र को सम्बोधित करते हुए बोस ने कहा–"विद्यार्थी वर्ग के बीच से ही राजनैतिक चिंतक और राजनेता उभर कर आते हैं।[11] उनका मत था कि भारतीय स्वतंत्रता गाँधीजी की नीतियों से ही नहीं बल्कि, इसके साथ–साथ क्रांतिकारियों, राजनीतिज्ञों तथा युवा वर्ग के अथक प्रयासों एवं बलिदानों के द्वारा संभव हो पायेगा। वे चाहते थे कि पुरुषों के साथ–साथ महिलाओं की भी समान सहभागिता हो। इस सोच को सार्थक रुप देने के लिए उन्होने 'आजाद हिंद फौज' में ''झांसी की रानी'' के नाम पर महिलाओं के नाम पर एक बटालियन का गठन किया था।[12] राजनैतिक यथार्थवाद से प्रेरित बोस ने द्वितीय विश्व युद्ध के वक्त ब्रिटेन की स्थिति का आंकलन करते हुए ब्रिटेन को भारत छोड़ने के लिए छः महिने का वक्त देने और ऐसा संभव न होने पर विद्रोह की चेतावनी दी थी। बोस के इस प्रस्ताव का कांग्रेस के भीतर जबरदस्त विरोध हुआ। परिणामस्वरुप सुभाष ने कांग्रेस के अध्यक्ष पद का त्याग करते हुए मई, 1939 में बोस ने 'फारवड ब्लॉक' का गठन किया। इसके पश्चात् वे वामपंथी शक्तियों को एकत्र करके सितम्बर, 1939 में ब्रिटेन द्वारा विश्व युद्ध के लिए भारतीय जनता और यहां के संसाधनों के उपयोग को लेकर ब्रिटिश सरकार के खिलाफ व्यापक जन आंदोलन प्रारम्भ किया। इसमें उन्हें अपार जन समर्थन प्राप्त हुआ। उन्होंने कौटिल्य के 'शत्रु का शत्रु मित्र है'–इस सिद्धांत पर विश्वास करते हुए ब्रिटेन के विरुद्ध जर्मनी और जापान का सहयोग प्राप्त किया था। यथार्थवादी राजनीति के समर्थक होने के साथ–साथ वे एक यथार्थवादी समाजवादी भी थे।

यूरोप के अधिकांश देशों की यात्रा के पश्चात उनके अंदर भारत को परखने का अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि विकसित हुई। उन्होंने साम्राज्यवाद, पूँजीवाद और सामंतवाद की भर्त्सना और समाजवादी विचारधारा के प्रचार–प्रसार के लिए सम्पूर्ण देश का दौरा किया। वे देश की स्वतंत्रता के साथ–साथ समाजवाद के भी पक्षधर थे इसलिए सर्वतोन्मुखी स्वतंत्रता (All Round Development) का विचार प्रस्तुत किया जिसमें बिना किसी भेद–भाव के सभी को समान रुप से जीवन–यापन सम्भव हो सके। बोस देश की राजनैतिक स्वतंत्रता की तात्कालिक आवश्यकता को स्वीकार करते थे, किन्तु यथार्थवादी होने के नाते इस बात को भली–भांति समझते थे कि जमींदारों तथा किसानों, पूंजीपतियों तथा मजदूरों, अमीरों तथा गरीबों के आन्तरिक सामाजिक संघर्ष को स्थगित नहीं किया जा सकता। उनका यह भी मानना था कि भारतीय समाज के धनी वर्ग ब्रिटिश सरकार के पक्ष में सम्मिलित हो जायेंगे। इस संबंध में उन्होंने लिखा था–"इतिहास का न्याय अनिवार्य रुप से अपने मार्ग का अनुसरण करेगा, राजनीतिक तथा सामाजिक संघर्ष को साथ–साथ चलाना पड़ेगा। जो दल भारत के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करेगा वही दल जनता को सामाजिक तथा आर्थिक स्वतंत्रता भी दिलायेगा।"[13] हमें सब प्रकार के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक बंधनों से मुक्त होना होगा तभी भारत में समाजवादी गणतंत्र की स्थापना की जा सकती है। वे चाहते थे कि समाज में हर वर्ग में समायोजन की स्थापना करना होगी तभी सामाजिक समस्याओं से छुटकारा मिल सकता है। हमारी दरिद्रता, निरक्षरता और बीमारी के उन्मूलन तथा वैज्ञानिक उत्पादन और वितरण से संबंधित समस्याओं का प्रभावकारी समाधान समाजवादी मार्ग पर चलकर ही प्राप्त किया जा सकता है।[14] उन्होंने जमींदारी का उन्मूलन तथा किसानों की ऋणग्रस्तता का अंत करने तथा ग्रामीण क्षेत्रों में सस्ते ऋण की व्यवस्था करने का समर्थन किया। उन्हें सहकारी आंदोलन में विश्वास था। वे कृषि के क्षेत्र में वैज्ञानिक प्रणालियों को अपनाने के पक्ष में भी थे। उन्होंने प्रस्ताव रखा कि राजकीय स्वामित्व में औद्योगिक विकास करने के लिए व्यापक योजना तैयार की जाय। हरिपुरा के अध्यक्षीय

भाषण के दौरान उन्होंने समाजवाद के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करते हुए कहा था–"राज्य को योजना आयोग की सलाह से खेती तथा उद्योग की व्यवस्था के द्वारा उत्पादन तथा वितरण दोनों ही क्षेत्रों में धीरे–धीरे समाजीकरण करने की व्यापक योजना अपनानी होगी।"[15] उन्होंने वर्णन किया था कि यद्यपि समाजवाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लिए तात्कालिक समस्या नहीं है फिर भी समाजवादी प्रचार आवश्यक है जिससे स्वतंत्रता मिलने पर देश समाजवाद के लिए तैयार हो सके।[16] वे मजदूर वर्ग के भी समर्थक थे।[17] वे निरन्तर मजदूरों की समस्या को लेकर चिंतित रहते थे। यह सत्य है कि उन्होंने अपने आर्थिक विचारों का उच्च सैद्धान्तिक स्तर पर कभी व्याख्या नहीं की। किन्तु इसमें संदेह नहीं कि वे श्रमिक वर्गों की आकांक्षाओं तथा हितों को अधिकाधिक मान्यता देने के पक्ष में थे।

बोस को उम्मीद था कि भारत में साम्यवाद विचारधारा को सफलता प्राप्त नहीं हो सकता। चूंकि साम्यवादी विचारधारा के लोग राष्ट्रवाद को पूँजीवाद की उपज के रुप में देखते थे, इसलिए वे मानते थे कि भारतीय राष्ट्रवादी तत्वों के साथ साम्यवाद का सामंजस्य स्थापित नहीं हो सकता। भारत के लोगों को धर्मविरोधी तथा नास्तिक साम्यवाद के साथ सहानुभूति हो ही नहीं सकती, क्योंकि यहां के लोगों को धर्म के प्रति वैसी भावात्मक शत्रुता का भाव विद्वमान नहीं है जैसी सोवियत रुस के मन में जार की स्वेच्छाचारिता का समर्थन करने वाले परंपरावादी चर्च के प्रति थी। साम्यवाद के आर्थिक सिद्धांतों को स्वीकार करने वाले भी ऐतिहासिक भौतिकवाद के समाजवाद को अंगीकार करने में हिचकिचायेंगे। मार्क्सवादी आर्थिक तत्व को अत्यधिक महत्व प्रदान करते थे पर सुभाष उसका समर्थन करने के लिए तैयार नहीं थे। उनका मानना था कि स्वतंत्र भारत में राज्य जनता का साधन होगा इसलिए यहाँ वर्ग संघर्ष की कहानी को दुहराने की आवश्यकता नहीं होगी जैसा कि सोवियत रुस में हुआ था। सोवियत रुस की अपेक्षा भारत में मजदूर वर्ग के अनुपात में किसानों की संख्या अधिक होने के कारण यहाँ किसानों की समस्याओं का सोवियत रुस के मजदूर वर्ग की समस्याओं से कहीं अधिक महत्व होगा।[18]

बोस भारत को एक शक्तिशाली राष्ट्र के रुप में देखना चाहते थे तथा ब्रिटिश सरकार की दासता से मुक्ति दिलाना उनका उद्देश्य था। भारतीयों के बीच में आपसी भेद–भाव, ऊँच–नीच तथा जाति–पांति आदी को दूर करके वे कांग्रेस के झंडे के नीचे सभी दलों को केन्द्रित करने के आकांक्षी थे। वे भारत की गुलामी का प्रमुख कारण सामाजिक वृति के अभाव को मानते थे। उनका मानना था कि हमारे समाज में कुछ समाज–संगठन–विरोधी भावना प्रवेश कर गई हैं जिसके परिणामस्वरुप हमने संगठित होकर कार्य करने की अपनी दक्षता और अभ्यास समाप्त हो गई है। लोग स्वार्थपरता और दूसरों के प्रति उदारता के कारण संगठित होकर कुछ नहीं कर पाते। उनका मत था कि संगठित होकर काम नहीं कर पाने के कारण–चाहे सामाजिक क्षेत्र में या व्यावसायिक क्षेत्र में, या राष्ट्रीय क्षेत्र में–हम किसी भी क्षेत्र में उन्नति नहीं कर पाएंगे। वे प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्र के आदर्श में अपने को समर्पित करने पर जोर देते थे जिससे मनुष्य के विचार तथा करनी और कथनी में एकरुपता स्थापित हो। वे लोगों के मन में छुपी श्रद्धा और विश्वास को जगाना चाहते थे, ताकि त्याग, साधना और प्रयत्नों के बल पर हम स्वाधीन भारत का निर्माण कर सकें।

बोस का मानना था कि केवल स्वतंत्रता, शिक्षा तथा आर्थिक विषमताओं के उन्मूलन के द्वारा ही इस देश के नागरिकों को ऐसा अवसर दिया जा सकता है कि वे अपनी पीठ सीधी कर सकें। राजनीतिक मुक्ति के कार्यक्रम में उन्होंने पूर्ण, आर्थिक तथा सामाजिक नियोजन का मद जोड़ दिया था। पर सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए क्रांतिकारी कार्यक्रम को लोकप्रिय बनाने में बोस का महत्वपूर्ण योगदान था। बोस सुदृढ़ राष्ट्र–शक्ति तथा देश की अखंडता के लिए बहुभाषी तथा बहुलिपि–प्रधान भारत देश में राष्ट्रभाषा तथा राष्ट्रलिपि करने के पक्ष में थे। उन्होंने स्वतंत्रता उपरांत ग्रेट–ब्रिटेन के साथ भारत के संबंध के लिए एक नयी योजना प्रस्तुत की थी। उनका कहना था कि ब्रिटिश शासन या सरकार से हमारी कोई दुश्मनी नहीं है, हम अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे हैं। हमें आगामी संबंधों के बारे में निर्णय लेने की पूरी स्वतंत्रता होगी। उनका मानना था कि स्वतंत्र राष्ट्र की तरह ब्रिटेन के साथ हम मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित कर सकते हैं। भारत मे हम कर्मयोग चाहते हैं। कार्य के दर्शन को हम पसन्द करते हैं क्योंकि हमें वर्त्तमान में रहना है। हम विश्व से अलग–थलग अपने दरवाजों और खिड़कियों को बन्द करके नहीं रह सकते। हमें आज के युग के नवीन हथियारों से लैस दुश्मनों से मुकाबला करने के लिए आर्थिक एवं

राजनीतिक मैदान में अपने अस्तित्व को कायम रखना है, क्योंकि अब बैलगाड़ी का युग समाप्त हो गया। स्वतंत्र भारत को अब आत्म–निर्भर होना पड़ेगा। नए–नए अस्त्रों–शस्त्रों से लैस होना होगा और सदैव आत्मरक्षा के लिए तैयार रहना पड़ेगा।

बोस नये आदर्शों से युक्त एक नये राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे। उनका विचार था कि, 'इसके लिए सबसे पहले राष्ट्रीय अभ्युत्थान और पतन के कारणों का अन्वेषण करना होगा। लोग सोंचते हैं कि प्राचीन काल से विभिन्न राष्ट्रों का अभ्युत्थान और पतन होता रहा है। इसके पीछे विधि का कोई विधान नहीं रहा है। जिस भविष्य का स्वप्न हमने देखना सिखा है, वह हमारे गौरव से अधिक गरिमामय है। इस स्वप्न और आदर्शवाद में ही निर्माण का बीज निहित है। राष्ट्र को अगर जगाना है तो वर्तमान को ध्यान में रखते हुए आदर्श की ओर ध्यान लगाने का अभ्यास करना होगा।

बोस ने हरिपुरा कांग्रेस के अध्यक्षीय भाषण के दौरान उन्होंने कहा था–"मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि हमारी दरिद्रता, निरक्षरता और बीमारी के उन्मूलन तथा वैज्ञानिक उत्पादन के वितरण से संबंधित समस्याओं का प्रभावकारी समाधान समाजवादी मार्ग पर चलकर ही प्राप्त किया जा सकता है।"[19] 19 मार्च, 1940 में रामगढ़ में आयोजित अखिल भारतीय समझौता विरोधी सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए बोस ने कहा था–"इस युग में वामवादियों का मुख्य कार्य साम्राज्यवाद का अन्त करना तथा भारतीय जनता के लिए राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त करना है। जब स्वतंत्रता प्राप्त हो जायेगी तो राष्ट्रीय पुनर्निमाण का युग प्रारम्भ होगा और वह हमारे आंदोलन की समाजवादी अवस्था होगी।"[20] उन्होंने अपने आर्थिक विचारों की उच्च सैद्धांतिक स्तर पर कभी व्याख्या नहीं की। पर, वे श्रमिक वर्ग की आकांक्षाओं तथा हितों को भी आधिक से अधिक मान्यता देने के पक्ष में थे। स्वतंत्रता, समाजवाद और लोकतंत्र के सिद्धांतों के प्रति उनका समर्पण भाव अनेक स्थानों पर परिलक्षित हुआ। उनका मत था कि उनका लक्ष्य लोकतंत्र, समाजवाद और स्वतंत्रता के शाश्वत सिद्धांतों से तनिक भी कम नहीं है। अतः स्पष्ट रुप से कहा जा सकता है कि सुभाष चन्द्र बोस राजनैतिक यथार्थवाद के प्रबल समर्थक थे। एक यथार्थवादी राजनैतिक कार्यकर्त्ता होने के साथ ही साथ वे एक यथार्थवादी समाजवाद के भी समर्थक थे। वे सोवियत संघ के साम्यवाद तथा काल मार्क्स के द्वन्दात्मक भौतिकवाद से हटकर भारत में गाँधीजी एवं अन्य वामपंथियों की भांति आर्थिक समस्याओं के तत्काल समाधान पर जोर देते थे। उन्होंने जाति, धर्म और सामप्रदायिक विद्वेष की भावना से उपर उठकर एक प्रखर राष्ट्रवादी के रुप में खुद को स्थापित किया। सैद्धांतिक स्तर पर अनेक मतभेदों के बावजूद सुभाष ने गाँधीजी के प्रति श्रद्धा भाव प्रदर्शित करते हुए उन्हें सर्वप्रथम राष्ट्रपिता कहकर सम्बोधित किया।[21]

निष्कर्ष

इस प्रकार बोस एक ऐसी लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था के निर्माण के पक्ष में थे जिसमें संप्रभुता का निवास आम जनता में निहित होगा। यह वास्तव में जनता का, जनता के लिए तथा जनता का शासन होगा, लेकिन विदेशी दासता से मुक्ति प्राप्त करने के बाद एवं एक समाजवादी समाज की स्थापना के क्रम में वे एक सर्वाधिकारवादी शासन की स्थापना करना चाहते थे जो नवीन भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की जटिल समस्याओं को दूर करेगा। यह देश की एकता एवं अखंडता की रक्षा करेगा। इसके द्वारा समाज को इस रुप में परिवर्तित किया जायगा जिससे समाजवाद की प्राप्ति का लक्ष्य प्रशस्त हो जायगा। इतना ही नहीं यह राजनीतिक नेतृत्व को उचित प्रशिक्षण प्रदान करेगा जिससे वे समाजवाद के लक्ष्य को प्राप्त कर सके।

जहां तक बोस का समाजवादी विचारधारा का प्रश्न है, उनकी समाजवादी मान्यता स्वतंत्रता, समानता, न्याय, अनुशासन व प्रेम पर आधारित था। वे इन्हीं पाँच मौलिक सिद्धांतों को भावी भारतीय समाज का मुख्य एवं वास्तविक आधार बनाना चाहते थे। ऐसा करते हुए उन्होंने भारत के अतीत के साथ भविष्य को जोड़ने का प्रयास किया।

बोस को राजनीतिक संघर्ष और समाजवादी विचारों की फलक से देखें तो वे मौलिक शास्त्रीय राजनीतिक विचारक नहीं थे, किन्तु उन्होंने सामाजिक –आर्थिक क्रान्ति तथा क्रांतिकारी पुनर्निमाण के कार्यक्रम को लोकप्रिय बनाने का कार्य किया, जिससे आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने के

हकदार बने। उन्होंने राष्ट्रीय स्वतंत्रता, समाजवाद और साम्यवाद के समन्वयकारी विचारों को लोकप्रिय बनाया।

वस्तुतः सुभाष चन्द्र बोस उच्च कोटि के देश भक्त थे जिन्होंने देश की स्वतंत्रता के लिए अपना सर्वस्व न्यौच्छावर कर दिया। उनके विचार 21वीं सदी के राष्ट्र के भविष्य के लिए जीवंत और सिद्धांत के रुप में व्यावहारिक और प्रासंगिक बने रहेंगे।

सन्दर्भ सूची

1. बोस, सुभाष चंद्र, (1965) *'एन इंडियन पीलग्रीम'* एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, पृ.—122।
2. बोस, सुभाष चंद्र, (1997) *'द इंडियन स्ट्रगल'* (1935—42) ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ.—409।
3. बोस, सुभाष चंद्र, (1965) *'एन इंडियन पीलग्रीम'* एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, पृ.—134।
4. वर्मा, वी. पी., (2010) *'आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन'* लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, पृ.—558।
5. बोस, सुभाष चंद्र, (1965) *'एन इंडियन पीलग्रीम'* एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, पृ.—142।
6. बोस, सुभाष चंद्र, (1997) *'द इंडियन स्ट्रगल'*(1920—34) ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ.—112।
7. बोस, सुभाष चंद्र, (सं.) शिशिर कुमार बोस, (1997) *'नेताजी संपूर्ण वाड्मय'* खण्ड—6 प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, पृ.—23।
8. बोस, सुभाष चंद्र, (1997) *'द इंडियन स्ट्रगल'* (1920—34) ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ.—408।
9. वही पृ.—413।
10. वही पृ.— 413—14।
11 .सुभाष चंद्र बोस (सं.) शिशिर कुमार बास 'नेताजी संपूर्ण वाड्मय' खण्ड—6 पृ.—34।
12. ह्यूग, टोय, (1959) *'द स्प्रिगिंग टाईगर': ए स्टडी ऑफ रिवोल्यूशनरी,* लन्दन कैसेल, पृ.—86, 146।
13. बोस, सुभाष चंद्र, (1997) *द इंडियन स्ट्रगल'*(1920—34) ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ.—413—14
14. द इंडियन एनुवल रजीस्टर, (1938) वोल्यूम—1 पृ.—340।
15. वही पृ.—341।
16. वही पृ.—341।
17. सिंह, मोहन, (1947) *'कांग्रेस अनमास्कड'* देश सेवक पार्टी ऑफ इंडिया, पृ.—119—38।
18. बोस, सुभाष चंद्र, (1997) *'द इंडियन स्ट्रगल'* (1935—42) ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ.—120।
19. द इंडियन एनुवल रजीस्टर (1938) वोल्यूम—1 पृ.—408।
20 सेलेक्टेड स्पीचस ऑफ सुभाष चंद्र बोस पब्लिकेशन डीवीजन भरत सरकार, (2017), पृ.—142।
21. वर्मा, वी. पी., (1997) *'आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन'* लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, पृ.—560।

****